Volume-8, No. 2 Aug.-2021, pp. Hin.13-17

राजनीतिक दल एवं मीडिया का गठजोड़

कु. दीपा रानी, शोध छात्रा
राजनीति विज्ञान विभाग
डॉ0 शिवकान्त यादव, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
राजनीति विज्ञान विभाग
डी0ए0वी0 (पी0जी0) कॉलेज, बुलन्दशहर उत्तर–प्रदेश भारत।

प्रस्तावना
मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है क्योंकि लोकतंत्र को और सुदृढ़ करने एवं राजनीतिक दलों की जवाबदेही सुनिश्चित करने में मीडिया की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, परंतु भारत में राजनीतिक दलों और मीडिया के मध्य गठजोड़ ने न केवल हमारी बौद्धिक स्वतंत्रता के लिये गंभीर चुनौती उत्पन्न की है बल्कि यह गठजोड़ लोकतंत्र के लिये भी गंभीर खतरा है।[1] वर्तमान में देश के अधिकांश न्यूज चैनल किसी न किसी राजनीतिक दल के मुखपत्र बने हुए हैं और राजनीतिक दलों को लाभ पहुँचाने के लिये लोगों के दृष्टिकोण, विश्वास एवं व्यवहार को प्रभावित करने का लगातार प्रयास कर रहे हैं तथा प्रोपगेंडा का सहारा ले रहे हैं जिसका उद्देश्य विचारों, सूचनाओं एवं अफवाहों को फैलाना है। वर्तमान में जब मीडिया को सर्वाधिक राजनीतिक दल प्रभावित करते हैं ऐसे में यह समझना आवश्यक हो जाता है कि राजनीतिक दलों की वह कौन–सी प्रवृत्ति है जिससे राजनीतिक दलों का मीडिया पर नियंत्रण समस्या को और गंभीर बनाती है।

मुख्य शब्द– मीडिया, लोकतांत्रिक मूल्य, मीडिया स्वामित्व,

मीडिया में लोकतांत्रिक मूल्य

भारत एक लोकतांत्रिक देश है और लोकतंत्र सुनिश्चित करने में राजनीतिक दल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण है परंतु वर्तमान परिदृश्य में राजनीतिक दलों में हाईकमान का प्रचलन बढ़ा है और देश के लगभग सभी राजनीतिक दल किसी व्यक्ति अथवा परिवार की जागीर बनकर रह गए हैं।[2] मतदाताओं को अपने कार्यों, राजनीतिक आदर्शों अथवा राजनीतिक विचारधाराओं के माध्यम से आकर्षित करने एवं स्वस्थ राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा के माध्यम से सत्ता प्राप्त करने के बजाय इन राजनीतिक दलों ने सोशल इंजीनियरिंग एवं कास्ट केमेस्ट्री जैसी नवीन जाति आधारित राजनीतिक प्रयोगों एवं स्पष्ट धार्मिक ध्रुवीकरण के लगातार प्रयासों द्वारा सामाजिक वैमनस्य को न केवल बढ़ाया है बल्कि देश की अखंडता के लिये भी गंभीर चुनौती उत्पन्न की है।

वहीं मीडिया चैनलों द्वारा धर्म, जाति एवं क्षेत्र आधारित मुद्दों को मतदाताओं तक इस तरह से तोड़ मरोड़ कर अथवा प्रबंधित करके पहुँचाया जाता है कि राजनीतिक दल के पक्ष में अधिक मतदाताओं को आकर्षित किया जा सके और बदले में संबंधित राजनीतिक दल से लाभ प्राप्त करने के अलावा अधिक–से–अधिक दर्शकों को आकर्षित करने में भी सफल होते हैं। राजनीतिक दल हमारे किसी भी पहचान के बिंदु जैसे– धर्म, जाति, क्षेत्र अथवा भाषा का शुभचिंतक होने का दावा करते हैं एवं गाहे–बगाहे इन पहचान से संबंधित विभिन्न मुद्दों को उठाते रहते हैं जिससे संबंधित राजनीतिक दल से लोगों को आत्मीयता हो जाती है और यह आत्मीयता समय के साथ प्रगाढ़ होती जाती है तथा वह राजनीतिक दल उस पहचान का सर्वमान्य प्रतिनिधित्वकर्त्ता बन जाता है।[3] इसके पश्चात् जनसामान्य द्वारा इस प्रतिनिधित्वकर्त्ता के किसी भी मत का समर्थन, बिना किसी तर्कशक्ति का प्रयोग किये किया जाता है, साथ ही आलोचना करने वालों का उग्र विरोध किया जाता है। एक मतदाता के रूप में हमसे अपेक्षा की जाती है कि अपने नेता का चुनाव निष्पक्ष होकर तर्कपूर्ण ढंग से करें, उसमें किसी भी पूर्वाग्रह को शामिल नहीं करना चाहिये।

जनसंख्या के अनुसार भारत निश्चय ही संसार का सबसे बड़ा जनतंत्र है। यहाँ राजतंत्र समाप्त हो चुका है, औपनिवेशिक शासन समाप्त हो गया है और अब हम स्वतंत्र हैं, हमारे लिखित संविधान के अनुच्छेदों में हमें यह अधिकार मिला परंतु प्रश्न तब भी विद्यमान है कि क्या सच में हम वास्तविक लोकतंत्र हैं? वास्तव में हम क्या स्वतंत्र हैं? लोकतांत्रिक प्रक्रिया का सुलभ

संचालन करने वाले अधिकांश भारतीय राजनीतिक दल क्षेत्रीय आधार पर संचालित व्यक्ति आधारित परंपरा पर संचालित हैं। इनमें से अधिकांश में दल का नेतृत्व वंश परंपरा के आधार पर ही निर्धारित किया जाता है जो वास्तव में लोकतांत्रिक परंपरा और विश्वास का उल्लंघन है। लोकतांत्रिक ढाँचे में व्यवस्था तमाम पूर्वाग्रहों से स्वतंत्र तो हैं, परंतु जनता पर प्रभाव स्थापित करने के क्रम में जाति, धर्म, और क्षेत्रवाद जैसे कारक चुनावी राजनय का भाग बन जाते हैं जो उचित नहीं है। लोकतंत्र में ये मतदान के प्रमुख निर्धारक तत्व नहीं होने चाहिये।[4] आज भारत किसी वाह्य सत्ता का गुलाम नहीं है परंतु फिर भी राजनीतिक व्यवहार के निर्धारण और कार्यान्वयन में हम किसी स्वतंत्र अभिवृत्ति को अभी तक न तो अपना सके हैं और वर्तमान स्थितियों में उसके विकास की संभावना भी नहीं दिखती है। समस्या मानसिकता के स्तर पर है जो मूलतः अभी भी दासता में जकड़ी हुई है।

सोशल मीडिया की सहज उपलब्धता ने राजनीतिक दलों को कम समय में अपनी व्यापकता के विस्तार का उपकरण दे दिया है। यह विश्वास किया जाता है कि यह माध्यम क्योंकि सर्वसमाज के लिये उपलब्ध है, अतः इसमें पारदर्शिता अधिक होगी तथा सूचनाओं को नियंत्रित और तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा। परंतु 2019 में कनाडाई डेटा सलाहकार व विसलब्लोअर क्रिस्टोफर वायली ने खुलासा किया कि ब्रिटिश राजनीतिक परामर्शदात्री संस्था कैंब्रिज एनालिटिका नामक संस्था ने विविध सोशल मीडिया प्लेटफार्मों से उपयोगकर्ताओं के विवरण एकत्र किये और उनका विश्लेषण करके संभावित मतदाताओं की रुचियों को एक विशेष राजनीतिक समूह को देकर भारतीय निर्वाचन प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने का प्रयास किया गया था और लोगों के व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयत्न किया था।[5]

यह गठजोड़ निकट अतीत की घटना न होकर वस्तुतः प्रथम विश्वयुद्ध के बाद की तत्कालीन सरकारों की एक रणनीति का हिस्सा रहा था जहाँ स्थानीय समस्याओं से प्रबुद्धजनों का ध्यान हटाने के एक प्रयास के रुप में समाचारपत्रों और रेडियो संदेशों में सरकार की छवि को सुधारने वाले ही समाचार प्रकाशित व संचारित होते थे। द्वितीय विश्व की संभाव्यता को निर्मित करने में उस समय के समाचार पत्रों व रेडियो प्रसारणो की बहुत बड़ी भूमिका थी। राष्ट्रवाद की जैसी आक्रामक व्याख्या उस समय के मीडिया ने की थी और जिसे हर देश में उसके राजनीतिक दलों ने पूर्ण समर्थन दिया था, उससे युरोप का नाजुक संतुलन ध्वस्त होना ही था। युद्ध को रोकने में जो मीडिया सशक्त भागीदारी कर सकता था, उसी ने उसे भड़काने में अपना पूरा जोर लगा दिया था। एक उन्नतिशील समाज की सामाजिक प्रगति काल के प्रवाह में अवरुद्ध होने लगती है, जिसे सुचारु बनाने का कार्य समाज के सभी अवयवों, जिसमें राजनीतिक दल और मीडिया के सभी समूह शामिल हैं, को करना होता है। दुर्भाग्यवश इन समूहों ने अपना कार्य पूरा नहीं किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के 73 वर्षों के पश्चात् चुनावों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले बिंदु आज भी जाति और धर्म ही हैं।[6]

भारत में लोकतांत्रिक ढाँचे को प्रभावी बनाने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि नागरिक ऐसे किसी भी समूह का भाग न बनें, जो मात्र भावनात्मक पक्षपात भावनाओं को आधार मानकर राजनीतिक दलों एवं मीडिया संस्थानों द्वारा निर्मित किये गये हों। समर्थन या विरोध हमारा स्वयं का होना चाहिये जो हमारे तर्क एवं विश्लेषण की परिणति हो, न कि किसी कुटिल बाह्य प्रेरक की आजाद समाज के लिए प्रेस की आजादी महत्वपूर्ण है"।[7] मीडिया किसी भी समाज में एक मजबूत राजनीतिक कथा शुरू करने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण है। दर्शकों द्वारा उपभोग की जाने वाली जानकारी सीधे तौर पर उनकी राय पर असर डालती है। यह जानकारी लोकतंत्र के जीवित रहने और फलने–फूलने के लिए महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। हालांकि इन दिनों एक चिंताजनक प्रवृत्ति यह है कि मीडिया आज किसी वर्ग विशेष के विशिष्ट हितों को पूरा करने मे संलिप्त है। सूचनाओं को एक स्रोत से दूसरे स्रोतों तक प्रसारित करने के अपने आरंभिक उद्देश्य से मीडिया दूर हो चुका है। मीडिया के साथ शासन शक्ति का योग दोधारी तलवार के समान है, जो कई बार समाज के हितों के प्रतिकूल भी सिद्ध होता है।

वैसे विविध विषयों पर सूचना तंत्र के विविध साधनों का प्रयोग लोकहित में समन्वय बनाने और असंतोष को नियंत्रित करने में सहायता प्रदान करने में होता रहा है। किसी भी सूचना पर प्रभावी नियंत्रण विविध स्रोतों के माध्यम से होता है। ऐसे में यदि कोई कठोर विधि लागू की जाती है तो सूचनाओं की रिपोर्टिंग करना कठिन हो जायेगा और यह लोकतांत्रिक ढाँचे के लिये बेहतर स्थिति नहीं है। उत्पादों के इलेक्ट्रॉनिक व प्रिंट मीडिया प्रचार भी एकाधिक अर्थों में मीडिया को नियंत्रित करता है। यद्यपि यह प्रवृत्ति भी अब पैर जमा चुकी है जिसमें अत्यंत महीन व कुशल रुप से राजनीतिक चिंतन को नियंत्रित करने का प्रयत्न हो रहा है। इसके साथ–साथ मीडिया संस्थानों पर सूचनाओं व समाचारों के संदर्भ में

स्व–नियंत्रण को लागू करने के लिये राजी करने हेतु कई बार दबाव रणनीतियों का भी प्रयोग किया जाता है।

राजनीतिक पहुँच और मीडिया स्वामित्व

विगत दो दशकों में भारतीय सूचना और समाचारों के प्रचार व प्रसार से जुड़ा परिदृश्य तेजी से बदला है और उसमें परिवर्तन की गति बहुत तेज भी हो गई है। सूचना तकनीक के क्षेत्र में तीव्र विकास के कारण यह क्षेत्र अत्यंत तेजी से विकसित हो रहा है। मीडिया संस्थानों की निरंतर बढ़ती संख्या, उनकी पाठक और दर्शक संख्या में होने वाली वृद्धि से उनकी बढ़ती टी. आर.पी. को हर दिशा मे देखा जा सकता है। इतने प्रभावी उपकरण ने कुछ सामाजिक व राजनीतिक विषयों पर अपनी ओर से चुनौतियों को भी जन्म दिया है। शासन के आंतरिक शक्ति मंडलों तक अपना प्रभाव रखने वाले इन मीडिया संस्थानों मे मामूली स्वामित्व रखते हुए सूचनाओं व समाचारों को गढ़ने के साथ–साथ सम्पूर्ण सूचनातंत्र के प्रभाव को भी गहरे तक प्रभावित करने में सफल हो रहे हैं।[8] सामान्यतः मीडिया संस्थान के स्वामित्व का प्रश्न उस संस्थान के द्वारा की जाने वाली रिपोर्टिंग में प्रस्तुत किये जाने वाले परिप्रेक्ष्य को बहुत महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। इन्हीं स्थितियों में समाचार से सम्बद्ध व्यक्ति या विचार के प्रति पूर्वाग्रह होना अनिवार्य ही है।

संस्थान के स्वामित्व के अतिरिक्त विज्ञापन भी संपादकीय सामग्री और अन्य समाचारों की उपादेयता पर प्रभावी नियंत्रण का एक और रूप है, क्योंकि विज्ञापन ही वह उत्पाद है जो अन्य उत्पादों के प्रचार से अधिकाधिक राजस्व उत्पन्न करता है। अतः यह बोलना उचित ही है कि भारतीय मीडिया संस्थान राजस्व के आगे पत्रकारिता मूल्यों को दरकिनार करने को भी तैयार रहते हैं। विज्ञापन की आमदनी पर बुरी तरह आश्रित मीडिया समूहों की विज्ञापन पर निर्भरता से समस्या तब दिखती है जब मीडिया उत्पादों के प्रचार में मर्यादाहीन हो जाता है और केवल धन कमाने के माध्यम का रुप ले लेता है। सरकारी प्रचारतंत्र तो वैसे भी सत्तारुढ़ दल की राजनीतिक विचारधारा और कार्यक्रमों के विज्ञापन में योगदान करते हैं। ऐसे में जब राज्य के विज्ञापनों पर मीडिया संस्थानों की नजर पड़ती है तो मीडिया की वित्तीय निर्भरता और आमदनी की इच्छा सरकार के विज्ञापन का माहौल निर्मित कर देती है। जो मीडिया समूह कई बार निष्पक्ष रिपोर्टिंग को लेकर ज्यादा पारदर्शी होते हैं, वे भी अपनी वित्तीय स्थिति को लेकर अक्सर इस अप्रत्यक्ष सकारात्मक दबाव के सामने डिग जाते हैं। मीडिया आज की तारीख में धन दोहन और धनार्जन का बहुत बड़ा केन्द्र है।

प्रायः देखा जा सकता है कि किसी विवादास्पद विषय पर सरकारों के द्वारा प्रत्येक मीडिया समूह की रिपोर्टिंग के आधार पर उन संस्थानों का अघोषित समूहीकरण कर दिया जाता है। कई संस्थान सरकार की हर नीति के विरोध की राह भी पकड़ लेते हैं। यद्यपि एक किस्म का अनदेखा दबाव सहयोगी और विरोधी, दोनों ही समूहों पर होता है। वर्ष 2017 के आंकड़ों के अनुसार, दृश्य–श्रव्य प्रचार के सरकारी विभाग डीएवीपी ने, जो मीडिया समूहों सरकारी विज्ञापनों का आवंटन करने के लिये उत्तरदायी होता है, हिंदी भाषा के समाचार पत्रों में प्रचार सामग्री प्रकाशित एवं विज्ञापित करवाने के लिए रु0 2160 मिलियन अथवा 32.468 मिलियन डॉलर और अंग्रेजी समाचार पत्रों में विज्ञापन के लिए रु0 1400 मिलियन अथवा 21.044 मिलियन डॉलर की धनराशि व्यय की है।[9]

सरकारी विज्ञापन वास्तव में इस सामाजिक व्यवस्था के कई बड़े छोटे समूहों और उनके सदस्यों के दाने पानी का इंतजाम करते हैं। स्थानीय स्तर पर प्रकाशित होने वाले दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक पत्र पत्रिकाओं और स्थानीय न्यूज चैनलों के लिये, जिनका परिचालन बजट बहुत सीमित होता है, सरकारी विज्ञापन आय का बहुत बड़ा स्रोत होते हैं। इनके माध्यम से सरकारें तथा मजबूत विपक्षी दल अपने–अपने एजेंडे आसानी से चलाते रहते हैं। शासन की नीतियों के अनुरुप चलने वाले पत्र व चैनल विज्ञापन के रुप में पुरस्कृत किये जाते है। यह विज्ञापन हाथी के अंकुश के समान कार्य करता है क्योंकि जब उन्हे इन समाचार पत्रों के द्वारा सरकारी नीतियों की आलोचना को रोकना होता है तो ये विज्ञापन कम या बंद कर दिये जाते हैं।

बड़े समाचार पत्र व मीडिया समूह सरकारी धन के इस अनन्य स्रोत से प्राप्त होने वाले आवंटन को प्रभावित करने के लिए बड़ा प्रयत्न करते हैं। यद्यपि इस आवंटन का निर्णयन पहले ही हो जाता है और इसमें अधिकतम सीमा तक अपारदर्शिता का प्रयोग किया जाता है। यह अनुदान एकमात्र दृश्य–श्रव्य प्रचार निदेशालय के द्वारा ऑकलित ऑकड़ों पर आश्रित होता है। इन आंकड़ों की वास्तविकता किसी राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त संस्था से प्रमाणित अधिकारप्राप्त/सनदी लेखाकार अर्थात चार्टर्ड एकाउंटेंट की अनुशंसा पर निर्भर होती हैं जो समाचारपत्रों की मुद्रित प्रतियों की आधिकारिक संख्या को प्रमाणित करता है। यद्यपि यह कह पाना बहुत कठिन है कि भारत में प्रकाशित होने वाले अखबारों

की पाठक संख्या के भौतिक सत्यापन की कोई सही विधि प्रयोग की जाती है। दैनिक, साप्ताहिक समाचार पत्रों, मासिक अखबारों और देशव्यापी प्रसार क्षमता वाले न्यूज चैनलों की संख्या में बड़े पैमाने पर वृद्धि हुई है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, 425 से ज्यादा टीवी समाचार स्टेशन और 1,20,000 से ज्यादा प्रकाशन हैं, जिसमें 17,239 दैनिक समाचार पत्र शामिल हैं।

मनोरंजन उद्योग और सूचना आधारित प्रसारणों में सरकार द्वारा प्रेषित किये जाने वाले विज्ञापनों में उस माध्यम (समाचार पत्र या चैनल) की बाजार आधारित छवि या रेंटिंग पर आधारित है। जिसकी प्रसार संख्या जितनी ज्यादा होती है, उसे विज्ञापन आसानी से मिल जाते हैं। समाचार पत्रों के संदर्भ में यह व्यवस्था बहुत कुछ प्रामाणिक रुप से कार्य करती है परंतु न्यूज चैनलों के लिये इसमें संदेह की गुंजाइश बनी रहती है क्योंकि ये रेटिंग बिना किसी पारदर्शिता या जवाबदेही के स्थापित कर दी जाती हैं। इसके अलावा, शीर्ष के कुछ न्यूज चैनलों के दर्शक लगभग उन सभी चैनलों के प्रसारण को देखने वाले होते हैं। ऐसे में सरकारी विज्ञापनों के आवंटन में समस्या आती ही है। यह भी सच है कि सभी सत्तारुढ़ राज्य सरकारें अपने कार्यों के प्रचार व प्रसार के लिये क्षेत्रीय भाषा वाले चैनलों पर विज्ञापन देने में रुचि रखती हैं। 'आधिकारिक' राज्य विज्ञापन राजनीतिक दलों से आता है और ऐसे में यह कोई आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है कि हमेशा से केन्द्र में स्थित सरकार ही सबसे बड़ी विज्ञापनदाता संस्था होती है क्योंकि उसे किसी एक राज्य के लिये ही प्रचार नहीं करना होता है। इस प्रकार यह एक अन्यान्योश्रित मंडल है जहाँ सरकारों और समाचार संस्थानों और न्यूज चैनलों को हमेशा एक दूसरे की जरुरत रहती है। मीडिया संस्थानों के स्वामित्व वाले लोग विज्ञापन के माध्यम से राजनीतिक दलों के भीतर अपनी पहुँच बनाकर लाभ उठाने के प्रयास करते हैं। अपने प्रचार के लिये साधन के रुप में इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर करना सरकारों की मजबूरी होती है।

वर्तमान में मीडिया संस्थानों पर राजनीतिक समूहों के जबरदस्त बढ़ते नियंत्रण को सीमित करने की अवश्यकता है।[10] सरकार और सत्तारूढ़ राजनीतिक दलों का मीडिया संस्थानों पर कसता हुआ शिकंजा एक बहुआयामी घटना है जिसका मुख्य लक्ष्य अपनी पैठ जनता के हर वर्ग तक बनानी है। विश्व में अधिकांश स्थानों पर आजकल विपक्षी दलों ने सरकारों और विशेषकर केन्द्रीय सरकारों के विरुद्ध नए तरह के विमर्श को गढ़ने में इन समाचार माध्यमों के अलावा सोशल मीडिया प्लेटफार्मों का भी उपयोग किया है।

सामाजिक सोपान में अंतिम या हाशिये पर रहने वाले जनसमूहों के लिये लोकतंत्र में यह स्थिति अधिक खराब हो जाती है क्योंकि उन तक आने वाली सूचनायें और समाचार वास्तविक नहीं होती हैं। सरकारें, राजनीतिक समूह और बड़े दबाव समूहों के द्वारा सूचनातंत्र पर जिस प्रकार का नियंत्रण बनाया गया है, उससे समाचारों के वास्तविक प्रसार और उनकी प्रामाणिकता पर प्रश्नचिह्न लग ही जाता है। इस स्थिति पर नियंत्रण के लिये यह आवश्यक प्रतीत होने लगा है कि राजनीतिक दलों व दबाव समूहों से जुड़े व्यक्तियों को मीडिया संस्थानों में स्वामित्व नहीं लेने देना चाहिये और इसके लिये निश्चय ही प्रतिबंध लगाने वाला कानून होना चाहिए।

वास्तव में मीडिया पर राजनीतिक दलों से सम्बद्ध व्यक्तियों के स्वामित्व का यह तानाबाना जनता की नजरों से ओझल है, इसे किसी भी खतरे के रूप में रेखांकित ही नहीं किया जाता है।[11] इस प्रकार के नियंत्रण प्रेस और न्यूज चैनलों की स्वतंत्र सूचना देने की क्षमता को सीमित करते हैं और लोकतंत्र के चतुर्थ स्तम्भ के रुप में कार्य करने की उनकी अधिकारिता को नकारात्मक रुप से प्रभावित करते हैं। समाचार प्रदान करने वाले विभिन्न साधन पत्रकारिता के नैतिक मानदंडों की रक्षा करने में तब तक सफल होते हैं जब तक उनके विचारों और कार्य अवस्थाओं पर किसी नियंत्रण की कोई आहट न हो। दुर्भाग्यवश अन्य देशों के समान ही भारत में भी आज एक इन्फो मीडिया सिंडीकेट अपने पूरे प्रभाव के साथ कार्य कर रहा हैं। इसी के प्रभाव में अधिकांश महत्वपूर्ण समाचार पत्र और न्यूज चैनल अपने समाचार लेखन में एक समान शब्दावलियों का प्रयोग कर के एक जैसे ही परिप्रेक्ष्यों का निर्माण करते है। स्थानीय स्तर की किसी समस्या के लिये राज्य प्रशासन को बाइपास करके सीधे सर्वोच्च स्तर को उत्तरदायी बनाने का तर्क वास्त में किसी समस्या को सुलझाने का कोई उपाय नहीं है। सब एक ही दुश्मन का प्रतिरोध कर रहे हैं, शीर्ष नेतृत्व के कार्यों मे समर्थन के लिए एक स्वर मे तर्क प्रस्तुत करते हैं"।

परंतु आज भी भारत में मीडिया पर राजनीतिक नियंत्रण के खिलाफ कोई वैधानिक नियामक सुरक्षा उपाय नहीं हैं।[12] भारतीय विधियाँ रेडियो के अपवाद के साथ टेलीविजन या समाचारपत्र–पत्रिकाओं में राजनीतिक दलों या उससे जुड़े व्यक्तियों के लघु या दीर्घ प्रवृत्ति वाले स्वामित्व को सीमित नहीं करती हैं। केवल राजनीतिक दलों और उसके सदस्यों को किसी प्राइवेट रेडियो एफ.एम. स्टेशन का संचालन करने से

रोकने के लिये विधि में प्रावधान है। उसके लिये राजनीतिक दल से सम्बद्धता एक निर्योग्यता मानी गई है। परंतु समाचार पत्र–पत्रिकाओं और इलेक्ट्रॉनिक न्यूज चैनलों के स्वामित्व धारको को अपनी या अपने पारिवारिक संबंधियों की राजनीतिक प्रतिबद्धता या दलों की सदस्यता का खुलासा करने की कोई अनिवार्य बाध्यता नहीं है।

संदर्भ सूची

1. भाणावत संजीव लोकतांत्रिक व्यवस्था और प्रेस की भूमिका, खत्री नीरज (संपा0), लोकतंत्र और मीडिया : चुनौतियां एवं समाधान, कल्पाज पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2013, पेज 16
2. वही, पेज 19
3. कुमार, राजेश, मीडिया और लोकतंत्र : एक दूसरे के पूरक या विरोधी, खत्री, नीरज (संपा0) लोकतंत्र और मीडिया चुनौतियां एवं समाधान, कल्पाज पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2013, पेज 107
4. भाणावत, संजीव, वही, पेज 20
5. चतुर्वेदी, मयंक, मीडिया और राजनीति का अंतर्सम्बन्ध, नया ज्ञानोदय, नई दिल्ली, 15 मार्च 2010, पेज 59
6. कुमार, राजेश, वही, पेज 22
7. पचौरी, सुधीश, मीडिया जनतंत्र और आतंकवाद, राजकमल प्रकाशन, 2013, पेज 34
8. वही, पेज 37
9. चतुर्वेदी, जगदीश्वर एवं सिंह, सुधा , भूमण्डलीकरण और ग्लोबल मीडिया, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली 2018 पेज 291
10. चतुर्वेदी, मयंक, वही, पेज 71
11. परिहार, कालूराम, मीडिया के सामाजिक सरोकार, अनामिका पब्लिकेशन, 2008 पेज 114
12. वही, पेज 118